RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-03
March -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

अम्बेडकर का चिंतन और दलित साहित्य

डॉ. वीरेंद्र सिंह कश्यप

सत्यवती महविद्यालय (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय

संविधान निर्माता डॉ. अम्बेडकर युगदृष्टा चिंतक और सामाजिक चेतना के पक्षधर थे। समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था को उन्होंने देश की एकता और अखण्डता के लिए बाधक माना। उनका मत था कि जाति–व्यवस्था समाप्त किये बिना न तो राष्ट्र की एकता अक्षुण्ण रह सकती है, न ही राष्ट्र का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास संभव है। समाज में जब तक शोषितों, पीड़ितों और अस्पृश्य जातियों के लोगों को प्रत्येक जगह भागीदार नहीं बनाया जायेगा, यह शोषण और दासता का कूच समाप्त नहीं होगा। डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे संविधान की नींव रखी जिसके अन्तर्गत ''आर्थिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध बनाकर दलित, पिछड़े समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है, क्योंकि इनके बिना भारत में प्रजातंत्र की असफलता असंभव थी।''[1]

बाबा साहब द्वारा निर्मित संविधान समानता और न्याय के आदर्शों पर आधारित है। इसके द्वारा समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसी विचारधाराओं को सफल बनाने का प्रयास हुआ है। दलितों, आदिवासियों, महिलाओं, तृतीयपंथी वर्ग और समाज की अन्य पिछड़ी जातियों के साथ दुर्व्यवहार, शोषण और भेदभाव निषिद्ध है। भारतीय कानून के समक्ष देश का प्रत्येक नागरिक एक समान है। इन प्रावधानों के उपरान्त भी दलित वर्ग आज शोषण और भेदभाव का शिकार है। दलित वर्ग स्वाधीनता के 73 वर्षों बाद भी सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए संघर्षरत हैं यह वर्ग सामाजिक अलगाव के कारण सदियों से अमानवीय व्यवस्था का शिकार है। समाज में इस वर्ग को दासता का बदत्तर जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ा। इनके साथ पशु तुल्य दुर्व्यवहार हुआ। पढ़ना–लिखना, व्यवसाय करना, धन अर्जित करना आदि इनके लिए निषिद्ध था। जाति–व्यवस्था के कारण मानवीय सभ्यता और संस्कृति की सभी उपलब्धियों से दलित वर्ग को अलग कर दिया गया था। शोषण और गरीबी के कारण यह वर्ग अपनी भौतिक परम्परा को भूल गया था। इस वर्ग की नियति केवल शोषण और दासता तक ही सीमित थी। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार– ''जातिप्रथा केवल श्रम का विभाजन नहीं बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन है।... यह एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था है जिसमें श्रमिकों का विभाजन एक के ऊपर दूसरे क्रम में होता है। ऐसा अप्राकृतिक श्रम–विभाजन दुनिया के किसी भी समाज में मौजूद नहीं था। जातिप्रथा पर आधारित श्रम–विभाजन में एक व्यक्ति को अपनी योग्यता और कार्यकुशता के अनुसार आजीविका की स्वतंत्रता नहीं है। यानी उसमें वैयक्तिक भावना, वैयक्तिक वरीयता और वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं है।''[2] जातिप्रथा दमन आधारित व्यवस्था है। यह व्यवस्था राष्ट्र, समाज और लोगों की सामाजिक–आर्थिक प्रगति में भी बाधक है।

डॉ. अम्बेडकर ने समाज के कमजोर अस्पृश्य वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए अभूतपूर्व ऐतिहासिक कार्य किये। बाबा साहब के कार्य इस दिशा में मील का पत्थर है। वह अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश, तालाब या कुँओं से पानी, समान वेतन आदि के लिए संघर्ष करते रहे। उनका मत था– ''दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। दलित चिंतन में राष्ट्र पूरे भारतीय परिवार या कौम के रूप में है, जबकि ब्राह्मणों के चिंतन में राष्ट्र इस रूप में मौजूद नहीं है। उनके यहाँ ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना है, जिसमें सिर्फ द्विज हैं, न दलित है, न पिछड़ी जातियाँ हैं और न अल्पसंख्यक वर्ग है।''[3] 'गरीबी और अशिक्षा इस वर्ग के लिए एक अभिशाप है। डॉ. अम्बेडकर ने इस वर्ग को शिक्षा का महत्व समझा। उनकी सुप्त चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया। समाज में इस वर्ग की स्त्रियों का स्थान दोयम रहा है। शिक्षा से वंचित दलित स्त्रियाँ समाज की बेड़ियों से जकड़ी रहीं हैं। उसके सुखद और सुखमय जीवन की कभी चर्चा नहीं हुई। बाबा साहब ने दलित स्त्रियों के उत्थान के लिए एक मूल–मंत्र दिया– ''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो''[4] इस मूलमंत्र को अपने जीवन में धारण करके ही वह देश के नव–निर्माण में भागीदार बन सकती हैं। डॉ. अम्बेडकर आर्थिक मुक्ति को आवश्यक मानते हैं। आर्थिक मुक्ति का प्रश्न इनके लिए बहुत जटिल हो गया है। इनकी पहली प्राथमिकता रोटी है। उनका तर्क था ''जातिव्यवस्था उसी स्थिति में समाप्त होगी, जब रोटी–बेटी का संबंध सामान्य व्यवहार में आ जाए।''[5]

बाबा साहब पर महात्मा फूले द्वारा चलाये गये आंदोलनों का गहरा प्रभाव था। यह प्रभाव उनकी पुस्तक 'जाति का उन्मूलन' का आधार बना। बाबा साहब का जीवन–दर्शन उनके विस्तृत अध्ययन एवं मंथन का परिणाम था। जातिवादी अन्याय का विरोध उनका मूल स्वर था। उनके नेतृत्व में देश के दलित, पिछड़े और अस्पृश्य लोग एकजुट हुए। सदियों से थोपी गई जातिव्यवस्था का विरोध आरम्भ हुआ। यह सामाजिक–व्यवस्था के विरूद्ध एक खुला विद्रोह था। डॉ. अम्बेडकर ने कहा– ''दलितों तुम विद्रोह करो। तुम्हारे

RRIJM 2015, All Rights Reserved

पास खोने के लिए गुलामी के सिवाय कुछ नहीं है पर पाने के लिए आजादी है।''[6] वह नारी उत्थान के पुरोधा थे। उनका मत था कि समाज और परिवार में स्त्री का बहुत बड़ा महत्व हैं जिस परिवार में स्त्री शिक्षित और अच्छे संस्कार की होगी उसकी संतान हमेशा ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगी। उनका तर्क था– ''दलित महिलाएं यदि सबसे पहले हिंदू धर्म व्यवस्था, हिंदू जाति व्यवस्था, हिंदू धार्मिक संस्कार, धार्मिक कर्मकाण्ड आदि से अपने आपको मुक्त कर लें, उससे मुक्त होने का प्रयास करें, तो भारतीय समाज में एक नई क्रांति की शुरूआत तो होगी और यही नहीं उनकी गुलामी और पिछड़ेपन के कारण भी अपने–आप समाप्त हो जाएंगे। इसलिए दलित नारी को अपनी आज की स्थिति पर रोने की बजाय उसके खिलाफ बगावत करने की उस स्थिति को बदलने की बात सोचनी चाहिए।''[7] इसका मुख्य कारण यह था कि दलित स्त्रियाँ स्वयं को भारतीय परम्परागत धार्मिक और जातीय संस्कारों से मुक्त नहीं कर पा रही थी। उनके पिछड़ेपन के कारण भी परम्परागत धर्म–व्यवस्था जाति–व्यवस्था और सामंती–व्यवस्था के भीतर विद्यमान थे। इसलिए बाबा साहब ने दलित नारी, मुक्ति के विभिन्न आंदोलन चलाये।

डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से दलित वर्ग के लोग धीरे–धीरे शिक्षा का महत्व समझने लगे। शिक्षा के फलस्वरूप ही सुप्त समाज की चेतना में जन–जागरण आरम्भ हुआ। इस जन–चेतना का हथियार बना दलित साहित्य। इस साहित्य ने दलित आंदोलन के लिए चिंतन और विमर्श की एक नवीन भाव–भूमि तैयार की। महाराष्ट्र में सर्वप्रथम दलित साहित्य की सामाजिक शक्ति की सृजनात्मक क्रांति की चेतना विकसित हुई। ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार– ''अम्बेडकर के जीवन संघर्ष में, जो दलितों में एक नई चेतना का सूत्रपात करता है, जिसे मुक्ति संघर्ष की चेतना कहने से ज्यादा प्रासंगिक होगा। यही चेतना साहित्य की चेतना बनकर दलित–साहित्य के रूप में दिखाई देती हैं जिसमें मुक्ति, स्वतंत्रता के गंभीर सरोकार विद्यमान है। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखंड, कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण–व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद, बाजारवाद का विरोध, सांप्रदायिकता का विरोध, ब्राह्मणवाद का विरोध अधिनायकवाद का विरोध जैसे सवाल दलित साहित्य में शामिल हैं।''[8]

महाराष्ट्र में शंकर राव, बाबूराव बागुल और अण्णा भाऊ साठे जैसे दलित लेखक सामाजिक शोषण, अमानवीय व्यवहार और ब्राह्मणवादी मानसिकता को अपने साहित्य के द्वारा व्यक्त करते रहे थे। बाबू राव बागुल की 'जेहटा की जात चोरली' (जब मैंने जात छुपाई) नामक कहानी संग्रह ने मराठी साहित्य की परम्परावादी मानसिकता को झकझोर दिया। इस कहानी संग्रह में अपनाई गई शैली को अन्य दलित साहित्यकारों ने भी अपनाया। इसके माध्याम से अभिव्यक्ति का नया रूप सामने आया। अर्जुन डांगले के अनुसार– ''बाबू राव बागुल की कहानियाँ दलितों के दुःख को लेकर इस विषम समाजव्यवस्था के विरूद्ध विद्रोही के रूप में जूझ रही थी।''[9] 'अस्मितादर्श' नामक त्रैमासिक पत्रिका का मराठी दलित साहित्य आंदोलन को एक नई दिशा देने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अर्जुन डांगले, नामदेव ढसाल, शंकरराव खरात, केशव मेश्राम, वामन इंगले इत्यादि दलित लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित कर 'अस्मितादर्श पत्रिका' अपना सामाजिक दायित्व का निर्वहन कर रही है। मराठी दलित साहित्य ने ही देश के अन्य दलितों को लिखने की प्रेरणा दी।

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना का विकास मराठी साहित्य से स्वीकार किया जाता है। महात्मा फूले की पुस्तक 'गुलाम गिरी', जिसकी प्रस्तावना महात्मा फूले ने मराठी और अंग्रेजी में लिखी है। गुलाम गिरी में ब्राह्मणवाद पर तीव्र प्रहार है। इस पुस्तक के माध्यम से पहली बार, 'दलित' लोगों की तुलना अमेरिका के 'नीग्रो' गुलामों से की गई। महात्मा फूले लिखते हैं– ''शूद्रों को राक्षसों की गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के उन सभी ग्रंथों का विरोध करना होगा जिसमें हमारी गुलामी का समर्थन है।''[10] गुलामगिरी में भारतीय समाज का वास्तविक चरित्र उद्घाटित है– ''शूद्रों में से कई जातियों को रास्ते पर थूकने की भी मनाही थी। इसलिए उन शूद्रों को ब्राह्मणों की बस्तियों से गुजरना पड़ता तो अपने साथ थूक के लिए मिट्टी के किसी एक बर्तन को रखना पड़ता था। समझ लो, उनकी थूक जमीन पर पड़ गई तो उसको ब्राह्मण पंडे ने देख लिया तो उस शूद्र की खैर नहीं।''[11] हिन्दी दलित साहित्य का आरम्भ कुछ लोग बौद्ध काल में खोजते हैं तो कुछ भक्तिकाल में। कबीर, रैदास, पीपा, नामदेव, तुकाराम जैसे संतों ने उत्तर मध्यकालीन साहित्य में अविस्मरणीय योगदान दिया, चाहे उसका रूप आध्यात्मिक ही क्यों नहीं रहा। उन्होंने वर्ण और जाति आधारित गलत नीतियों के विरूद्ध विचार संपर्क को अपने साहित्य का विषय बनाया। इन संतों के काल को आध्यात्मिक विद्रोह का काल भी कह सकते हैं। उन्होंने उन आध्यात्मिक मूल्यों का विरोध किया जिसमें मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव था। रैदास के अनुसार– ''ब्राह्मन मत पूजिए, जो हौवे गुण हीन। पूजिए चरन चाण्डाल के, जो होवै गुन परवीन। .....जाति–पाँति के फेर में, उरझि रह्यौ सब लोग। मनुष्यता को खात है, रविदास जात को रोग।''[12] कबीर का स्वर भी वर्णव्यवस्था विरोधी रहा है। उन्होंने हिन्दुओं की जाति–व्यवस्था, छुआछूत, खानपान आदि के व्यवहारों का इन शब्दों में खण्डन किया है–

'काहैं की कीजै पाँडे छोति विचारा/छोतिहिं ते उपना संसारा।।
हमारे कैसें लोहू तुम्हारे कैसे दूध/तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।।
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए। तौ ग्रभवास काहे को आये।।

जनमत छोति मस्त ही छोति। कहै कबीर
हरि की निर्मल जोति।।'

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू नहीं हो सकता। इसको कबीरदास ने कितने सरल ढंग से कहा है–

'जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तौ आन वाट है
क्यों नहिं आया।[13]

सन् 1914 में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' सरस्वती नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। यह विशुद्ध रूप से दलित संवेदना की कविता है। इसमें विचारोत्तेजक दलित विमर्श है। जिसमें एक 'अछूत' अपनी वेदना का वर्णन करता हैं वह कहता है– जिस हाड–मांस का शरीर ब्राह्मण का बना है उसी का अछूत–शरीर भी बना है। क्या कारण है कि ब्राह्मण की तो पूजा की जाती है और अछूत को जूतों से मारा जाता है? उसके हाथ–पैर तोड़ दिए जाते हैं–

पांके में से भरि, भरि, पियतानी पानी।
पनहीं से पिटि पिटि हाथ जोड़ तुरि दैंले।।

स्वामी अछूतानन्द हरिहर, हीराडोम के समकालीन थे। स्वामी अछूतानन्द हरिहर एक कवि, नाटककार और अच्छे पत्रकार थे। उन्होंने उत्तरभारत में 'आदि हिंदू आंदोलन' चलाया। इस आंदोलन का 'अछूत समुदाय' पर व्यापक असर पड़ा। स्वामी अछूतानन्द हरिहर के 'आदि हिंदू आंदोलन और साहित्य ने केवलानन्द, अयोध्यानाथ दण्डी, स्वामी शंकरानन्द आदि कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने भी दलित साहित्य को आगे बढ़ाने का कार्य किया। डॉ. तेजसिंह के अनुसार– ''इधर डॉ. अम्बेडकर दलित धुरी बने हुए थे, उधर स्वामी अछूतानन्द अम्बेडकर के राजनीतिक, सामाजिक, सुधार–आंदोलन को साहित्य के स्तर पर अभिव्यक्ति देने की सफल कोशिश कर रहे थे। उत्तर भारत में दलित पत्रकारिता की शुरूआत का श्रेय भी स्वामी अछूतानन्द को ही जाता है। 'आदि हिंदू' दलित समाज का पहला पत्र था, जो उनमें राजनीतिक चेतना के साथ–साथ सामाजिक चेतना का भी विकास कर रहा था।''[14]

20वीं सदी में होने वाले सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों का दलित आंदोलन पर भी प्रभाव पड़ा। इस समय के कुछ हिन्दी कवियों में दलितों के प्रति सहानुभूति और करूणा का भाव अवश्य था मुक्ति का नहीं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' दलित जन पर कल्याण की बात करते हैं, किससे?

दलित जन पर करो करूणा।
दीनता पर उतर आये, प्रभु तुम्हारी शक्ति
अरूणा।

तो मोहन लाल द्विवेदी मंदिर प्रवेश के लिए एक अछूत से प्रार्थना करवाते हैं–

यथा – खोलो मंदिर द्वार पुजारी।
मत ठुकराओ, चरण धूलि लूं बार–बार जाऊ बलिहारी।।
क्यों तुमने शबरी–निषाद की, अपने मन से बात बिसारी?
मैं भी एक उन्हीं के कुल का, प्रभु पद पूजन का अधिकारी।

इस दलित विमर्श में अछूतों के सामाजिक और आर्थिक हित की बात अवश्य है, छुआछूत के विरोध का स्वर है पर अछूतों की वास्तविक आर्थिक स्थिति की बात कोई नहीं करता। हिंदू दलित विमर्श समाज के मूल ढाँचे पर कोई प्रहार नहीं करता। सन् 1930 के आस–पास प्रेमचंद ने सामाजिक यथार्थ को लेकर अपना रचना–कर्म आरम्भ किया। प्रेमचंद पर डॉ. अम्बेडकर के दलित आंदोलन का तो कम, लेकिन महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये अछूतोद्धार का प्रभाव ज्यादा था। प्रेमचंद का दलित विमर्श अम्बेडकर के दलित विमर्श में पृथक था। डॉ. अम्बेडकर ने महाराष्ट्र के महाड़ आंदोलन और कालाराम मंदिर में अछूतों को प्रवेश करवाने के लिए जो संघर्ष और सत्याग्रह किया, प्रेमचंद ने उससे कुछ प्रभावित होकर 'ठाकुर का कुआं', 'मंदिर', 'सहमति' और 'कफ़न' जैसी कहानियां लिखी। इन कहानियों में अछूतों के जीवन और शोषण का यथार्थ चित्रण मिलता है। ''1925 में प्रकाशित 'रंगभूमि' हिन्दी का वह पहला उपन्यास है जिसका नायक 'सूरदास' चमार दलित जाति का है। यह दलित नायक भारत का संघर्षशील जनता के उस अथक संघर्ष का प्रतीक है जो जीवन के अंतिम क्षण तक अपनी भूमि की रक्षा करते हुए प्रणोत्सर्ग कर देता है।''[15]

प्रेमचंद के साहित्य में जो अछूत–शोषित पात्र हैं वे नियति और विद्रोह के वास्तविक यथार्थ के साथ हमारे समक्ष आते हैं। 'कफ़न' कहानी के संदर्भ में प्रेमचंद ने लिखा है– ''विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो–चार बर्तनों के सिवा कोई संपत्ति नहीं। फटे चिथड़ों से अपनी नग्नता को ढांके हुए जिए जाते थे। संसार की चिंताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। गाली भी खाते हैं, मार भी खाते हैं, मगर कोई गम नहीं।''[16] शायद प्रेमचंद का उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों को जनता के समक्ष लाना था। करूणा और सहानुभूति के स्तर से ऊपर उठकर वास्तविक जीवन की पीड़ा और शोषण का चित्रण करना मात्र था।

प्रेमचंद के पश्चात् हिन्दी के कुछ अन्य रचनाकारों ने भी अछूत वर्ग को लेकर साहित्यिक कर्म किया। इनमें अमृतलाल नागर कृत 'नाच्यो बहुत गोपाल', निराला कृत 'कुलीभाट', 'चतुरीचमार' गिरिराज किशोर कृत 'परिशिष्ट', जगदीश चन्द्र कृत 'धरती धन न अपना', 'नरकुण्ड में वास', 'जमीन अपनी तो थी', मधुकर सिंह कृत 'उत्तरगाथा', रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारू', मनु भंडारी कृत 'महाभोज आदि उपन्यासों में दलित वर्ग की कुंठाएं, पीड़ाएं, शोषण, तिरस्कार, आदि का वास्तविक सत्य चित्रित हुआ है। इन उपन्यासों में और कुछ काव्य–कृतियों में शोषण और जातिवाद की पीड़ा का स्वर तो प्रधान है। हर दलित वर्ग की मुक्ति का कोई समाधान नहीं है। इनके मुक्ति के स्वप्न को दलित लेखकों का स्वर मिला है, जहाँ मुक्ति का समाधान भी है। हिन्दी दलित

RRIJM 2015, All Rights Reserved

साहित्य के लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार– ''दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है। जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुता का भाव है और वर्णव्यवस्था में उपजे जाति भेद का विरोध है।''[17] दलित साहित्यकारों ने भूख, गरीबी, अशिक्षा, पारम्परिक घृणित कार्य, आर्थिक विपन्नता, जातीय प्रताड़ना, सामाजिक तिरस्कार, क्रूरतापूर्ण दुर्व्यवहार आदि को स्वयं जिया और भोगा है। दलित साहित्य के माध्यम से उनका सामाजिक यथार्थ सामने आया है। शोषण के विविध आयाम सामने आये हैं। दयापवार ने 'अछूत' नाम से आत्मकथा लिखी। इसमें लेखक के स्वयं भोगे कष्टों का वास्तविक चित्रण है। दयायवार लिखते हैं– ''मरे हुए जानवरों के शरीर को उधेड़ना, उसमें मांस काटकर लाना, उसे घरों में टांगकर सुखाना, उसका सड़ना, उसको पकाकर खाना, इन सबको पढ़ना एक अछूत के लिए जिंदा नरक से गुजरना है।''[18]

सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' (आत्मकथा) दलित जीवन की वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। दलितों के सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक और राजनीतिक आधारों से उन्हें कैसे तिरस्कृत और वंचित किया जाता है, इसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण सूरजपाल चौहान ने किया है। कमलेश्वर के अनुसार– ''तिरस्कृत पढ़ने के बाद मैं उसी तरह अवसन्न रहा हूँ जैसे दयापवार की 'अछूत' पढ़ने के बाद रहा था। तिरस्कृत ने मुझे लम्बे समय तक लगभग संज्ञा–शून्य रखा है... यह एक दारूण कथा है... मानव स्वतंत्रता के लिए विक्षिप्त कर देने वाला प्रामाणिक दस्तावेज है...।''[19] दलित लेखकों में वर्णव्यवस्था के प्रति आक्रोश है। ये दलित लेखक बौद्ध धर्म के समर्थक हैं। ये जातीय चेतना के साथ ऐसे समाज की कल्पना कर रहे हैं जहाँ समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व हो। आज हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श और दलित सवाल को लेकर एक ऐसा शिक्षित वर्ग पैदा हो चुका है जो दलितों के दुःख, भय, शोषण को साहित्य के द्वारा समाज चेतना का भाव पैदा कर रहा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन' (आत्मकथा), 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ', 'घुसपैठिए' 'सलाम' पच्चीस चौका डेढ़ सौ (कहानी), सदियों के संताप (कविता) 'ठाकुर का कुआँ' (कविता), भगवानदास कृत 'मैं भंगी हूँ' (आत्मकथा) माता प्रसाद कृत 'झोपड़ी में राजभवन' (आत्मकथा) सूरजपाल चौहान कृत – 'तिरस्कार' 'संतप्त', (आत्मकथा) 'चूहड़ा' (कहानी), मोहनदास नैमिशराय कृत – 'अपने–अपने पिंजरे' भाग–1, 2 (आत्मकथा), 'अपना–गांव' 'आवाजें' (कहानी), 'डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' कृत 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (आत्मकथा), 'मैं काँच हूँ' डॉ. डी.आर. जाटव कृत 'मेरा सफर मेरी मंजिल' (आत्मकथा), कौसल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' (आत्मकथा), तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया' (आत्मकथा), सुशीला टॉकभौरे कृत 'सिलिया' 'टूटता बहम' (कहानी), हमारे हिस्से का सूरज (कविता), जयप्रकाश कर्दम कृत 'मेरी जात' (आत्मकथा), 'नो बार' 'सांग और चमार', (कहानी), 'गूंगा नहीं था मैं' (कविता)

सत्यप्रकाश कृत 'जस तस भई सबेरा', (उपन्यास), श्रीचन्द अग्निहोत्री कृत – 'नयी बिसात', डॉ. आगपूड़ी कृत – 'अभिशाप', मदन दीक्षित कृत – 'मोरी की रट', दयानन्द बहोटी कृत – 'सुरंग' कहानी, 'कुसुम बियोगी कृत – 'चार इंच की कलम' (कहानी), 'टुकड़े–टुकड़े दस (कविता), 'अटवेडम की कविताएँ', हरिकिशन वियोगी कृत – 'दलितों में दलित' (कहानी), 'कवल भारती कृत – डॉ. प्रेमशंकर कृत – 'रोटी की भूख' मलखान सिंह कृत 'सुनो ब्राह्मण' (कविता)। सुनो–ब्राह्मण कविता भारतीय वर्ण व्यवस्था, ब्राह्मणवादी सामंती व्यवस्था पर तीखेपन से हमला करती है। इन दलित साहित्यकारों ने दलित उत्पीड़न का मूल कारण जातिवाद को माना है, इसलिए इन्होंने वर्ण व्यवस्था पर कुठाराघात किया है। इसलिए कह सकते हैं कि समकालीन दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के चिंतन की उपज है। उनके चितन से प्रभावित होकर ही हिन्दी दलित लेखक समाज में व्याप्त सदियों पुरानी जाति आधारित वर्ण–व्यवस्था का विरोध कर रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी तर्कपूर्ण चिंतन दृष्टि से दलित साहित्य को एक सकारात्मक दिशा प्रदान की। उन्होंने 'जातिवाद' का विरोध और 'मनुष्यवाद' की स्थापना पर बल दिया। साहित्य समाज का दर्पण है, इस दर्पण में सौन्दर्य पर अधिक बल रहा है। दलित साहित्य में सौन्दर्य के स्थान पर जातिवाद आधारित सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। कंवल भारती के अनुसार ''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसकी अभिव्यक्ति करता है... यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।''[20] दलित साहित्य दलित वर्ग द्वारा भोगे यथार्थ का वास्तविक चित्रण है। इसके द्वारा उनकी वेदना चीख आक्रोश, घुटन, चुभन छटपटाहट, पीड़ा आदि को अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार ''दलित जातिविहीन और वर्ग विहीन समाज के लिए संघर्षरत है।

संदर्भ सूचीः–

1. दलित नारी : एक विमर्श – (संपादित) ज्ञानेन्द्र रावत, मंजू सुमन, सम्यक प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 66
2. अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज (संपादित) – डॉ. तेजसिंह, स्वराज प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ. 43
3. दलित विमर्श की भूमिका – कंवल भारती, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, 2002, पृ. 22
4. दलित नारी : एक विमर्श – (संपादित) ज्ञानेन्द्र रावत, मंजू सुमन, सम्यक प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 243

RRIJM 2015, All Rights Reserved

7. वही, पृ. 201
8. दलित चेतना और हिंदी कथा साहित्य ओम प्रकाश वाल्मीकि (लेख) समकालीन जनमत, पृ. 52–53
9. दलित साहित्य एक अभ्यास (प्रस्तावना), भूमिका भाग– अर्जुन डांगले, पृ. 9
10. दलित विमर्श की भूमिका – कंवल भारती, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, 2002, पृ. 106
11. दलित नारी : एक विमर्श – (संपादित) ज्ञानेन्द्र रावत, मंजू सुमन, सम्यक प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 53
12. रैदास रचनावली (संपादित) डॉ. गोविन्द रजनीश अमर सत्य प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. 137
13. कबीर ग्रंथावली (संपादित) – डॉ. श्यामसुंदर दास, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 43
14. उपेक्षा – 'जनकवि बिहारी लाल' विशेषांक (संपादित) डॉ. तेजसिंह, अंक–9, अक्टूबर–दिसम्बर 2004, पृ. 6
15. प्रेमचंद के आयाम (संपादित) – ए. अरबिंदाक्षन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2006, पृ. 197
16. वही, पृ. 218
17. दलित साहित्य और सामाजिक न्याय – डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ. 88
18. दलित विमर्श की भूमिका – कंवल भारती, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, 2002, पृ. 124
19. 'तिरस्कृत' (भूमिका से) – सूरजपाल, अनुभव प्रकाशन, संस्करण 1998
20. हंस पत्रिका – शरण कुमार लिम्बाले – जनवरी–फरवरी 1990, पृ. 53

RRIJM 2015, All Rights Reserved